मृच्छकटिक में वर्णित तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

चन्द्रप्रभा कुमारी*
डॉ० अरविन्द कुमार*

मृच्छकटिक प्रकरण महाकवि शूद्रक की एक अनुपम कृति है। इस प्रकरण में महाकवि शूद्रक ने तत्कालीन सामाजिकता के विभिन्न पहलुओं का अविकल चित्रण किया है। यहाँ तत्कालीन जनजीवन के एक ऐसे पक्ष का वर्णन किया गया है जो बहुत ही साहसमय तथा प्रगतिशील है और उस युग के धर्म, अर्थ, समाज तंत्र आदि के लिए एक महान चुनौती है। उस समय समाज छिन्न भिन्न थी। संस्कृति प्रायः लुप्त हो रही थी। जाति व्यवस्था कठोर हो चली थी। जन्म से जाति मानी जाती थी और जातिगत अभिमान भी उत्पन्न हो गया था। इन सबका एक विशिष्ट झलक वीरक और चन्दक के विवाद में प्राप्त होती है। सम्भवतः धर्म के प्रभाव के कारण कभी कभी जाति की अपेक्षा मानव गुण को भी वरीयता दी जाती थी। चण्डाल की उक्ति में इसकी झलक मिलती है–

''न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुलके जातपूर्वा अपि।
योभि भवन्ति साधुं ते पापस्ते च चण्डालाः।''

इस श्लोक में वहाँ का दृश्य प्रस्तुत है जब दो चण्डालों के द्वारा ले जाया जाता है। उस समय चाण्डाल कहता है बालक चाण्डाल कुल में उत्पन्न होकर भी हम चाण्डाल नहीं है। जो सज्जन को अपमानित या पीड़ित करते हैं वे पापी हैं और वे चाण्डाल हैं। इस चाण्डाल की उक्ति से तत्कालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ स्वयं प्रस्फुट हो उठती है।

उस समय अपने ज्ञान और चरित्र के कारण ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। वे समाज के पूजनीय थे। शर्विलक जैसे ब्राह्मण चोरी आदि दुष्कर्मों में भी फँस गये थे। कुछ ब्राह्मण व्यापार कार्य भी करते थे। चारुदत्त के पिता एक सार्थवाह थे। ब्राह्मणों को समाज में विशेष अधिकार तथा सम्मान प्राप्त था। इसकी सूचना नवम अंक में उस स्थल से प्राप्त होती है जब शकार और अधिकरणिक वार्त्तालाप

***शोध छात्रा, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**
***शोध निर्देशक/अध्यक्ष/सहायक प्रोफेसर प्राकृत विभाग सर्वोदय कॉलेज, गंजभड़सरा, रोहतास**

के क्रम में आधिकरणिक कहता है कि– हे चारुदत्त! निर्णय करने में हम प्रमाण है किन्तु शेष कार्य करने में राजा प्रमाण है फिर भी हे शोधनक! राजा–पालक को यह सूचित किया जाये–

''अयं हि पालकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।।''[1]

इस श्लोक से तत्कालीन संस्कृति का महत्त्व अत्यधिक प्रतीत होता है। तत्कालीन, सामाजिक स्थिति में ब्राह्मण के सुवर्ण आदि को चुराना भी महापातक माना जाता था तथा ब्राह्मण का स्थान सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। दशम अंक में विदूषक की उक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

''समीहितसिद्धे प्रवृत्तेन ब्राह्मणोऽग्रे कर्तव्यः।
अतो भवत्या अहमग्रणीर्भवामि।।''[2]

वैश्य व्यापार में बढ़े–चढ़े थे। कायस्थ के प्रति समाज में अच्छी भावना नहीं थी। फाँसी देने का कार्य चाण्डाल करते थे। प्राकृत जनों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था।

उस समय भिन्न–भिन्न जातियाँ पृथक्–पृथक् मोहल्लों में बसने लगी थी और जातियों के नाम पर मोहल्लों के नाम पड़ने लगे थे–

''स खलु श्रेष्ठी चत्वरे वसति।''[3]

समाज में विवाह प्रथा थी। असवर्ण स्त्री में भी विवाह करने का निषेध नहीं था तभी तो चारुदत्त और शर्विलक जैसे ब्राह्मणों ने वेश्याओं से विवाह किया था। उस समय रखेली की प्रथा भी प्रचलित थी। स्त्रियों में सती होने की प्रथा प्रचलित थी। सम्भवतः परदे की प्रथा नहीं थी क्योंकि धूत्ता बिना परदे के ही सबके सामने रहती है। उस समय स्त्रियाँ सुवर्ण के विभिन्न आभूषण धारण करती थी। पुष्पों से वेणी को अलंकृत करने की भी प्रथा थी–

''किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना
रक्ताशुकं पवनोदशं वहन्ती।
रक्तौत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती।
टङ्कैर्मनः शिलगुहेव विदीर्यमाणा।।''[4]

तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीतियाँ अत्यधिक दोषग्रस्थ थी। उस समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी वेश्याओं से सम्बन्ध रखते थे। जैसा कि चारुदत्त और वसन्तसेना के सम्बन्ध से प्रतीत होता है। यही कारण है कि जब नवम अंक में न्यायाधीश चारुदत्त से पूछता है, उस समय चारुदत्त का मष्तक झुक जाता है।

''आर्य! गणिका तव मित्रम्?
लज्जया भीरूतया वा चारित्रमलीकं निगूहितुम्।

स्वयं मारचित्वा अर्थकारणादिदानी गुहति न तद्धि भट्टकः।।[5]

इस दृश्य से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति में वेश्याओं को घृणित समझा जाता था। अनुभवशील गणिकाएँ इस स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थी और पवित्र वधू पद पाने के लिए प्रयत्न करती थी। जब प्रथम अंक में शकार, विट आदि द्वारा वसन्तसेना अनुगमन की जा रही है उस समय अपमानजनित शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है–

''तरूणजनसहायसिश्चन्त्यतां वेशवासो,
विगणय गणिका त्वं मणिजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्य पण्यभूतं शरीरं
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं वाप्रिलं वा।''[6]

उक्त विषय के आलोक में स्पष्ट है कि वेश्याओं को समाज में घृणित समझा जाता था। समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो वेश्याओं से विवाह करने का भी साहस करते थे। चारुदत्त और शर्विलक ऐसे ही साहसी युवक थे।

तत्कालीन परिस्थिति में जुए की प्रथा भी थी। जुआरिओं के अपने नियम थे, अपनी मण्डली थी। जुए का खेल वैध माना जाता था और यदि कोई देय धन नहीं देता था तो न्यायालय द्वारा वह धन वसूल कराया जाता था।

''राजकुलं गत्वा निवेदयावः।''[7]

इस अवसर पर देखा गया है कि जुआरी और माथुर ये दोनों आपस में वार्तालाप करते हैं। उस समय जुआरी कहता है कि मैं राजकुल में जाकर निवेदन कर देते हैं कि संवाहक वसन्तसेना के घर में प्रवेश किया है। मदिरा पान की प्रथा भी उस समय की संस्कृति बन गई थी। सम्भवतः दास खरीदे जाते थे और धन देकर उन्हें दासता से मुक्त कराया जा सकता था। मदनिका इसी प्रकार की दासी थी जिसे शर्विलक ने मुक्त कराया था। तत्कालीन सामाजिक परिवेश में जनजीवन आर्थिक दृष्टि से सुखमय था। यहाँ का व्यापार समुन्नत था। जहाजों से समुद्र पार तक व्यपार होता था। जिसके कारण धनिकों के यहाँ सुवर्ण राशि थी। अनेक प्रकार के सुवर्णाभूषण थे। चारुदत्त की पत्नी धूत्ता का चतुःसमुद्रसारभूता रत्नमाला और वसन्तसेना के रत्न तथा आभूषण इसके पुष्ट प्रमाण है और सुवर्ण की खेलने की गाड़ी से यह बात भली–भाँति प्रगट होती है–

''मा तावदखादितस्यामुक्तस्यात्पमूल्यरथ चौरेरपहतस्य
कारणाच्युत समुद्रसारभूता रत्नावली दीयते।''[8]

चारुदत्त ने अनेक उपनगर, विहार, आराम, देवालय, तालाब और कूपों का निर्माण कराया था। जिसका प्रमाण नवम अंक में है। यह विदूषक की उक्ति से पता चलता है–

''भो भो आर्याः येन तावस्पुरस्थापन विहारारामदेवालयतडागकूप
पयूपैरलङ्कृता नगर्युज्जयिनी।''[9]

उस समय धनिकों का बहुत सा धन वेश्याओं के यहाँ चला जाता था। यही कारण है कि वेश्याओं की सम्पत्ति कुबेर के समान थी और वे हाथी भी रखती थी जिसका साक्षात् दर्शन वसन्तसेना के गृह वर्णन से प्राप्त होता है।

उस समय आवागमन के साधनों में बैलगाड़ी का विशेष प्रचलन था। चारूदत्त और शकार अपने प्रवहन रखते थे। कभी–कभी घोड़े का भी उपयोग किया जाता था। न्यायाधीश नवम अंक में वीरक को घोड़े पर पुष्पकरण्डक उद्यान में जाने का आदेश देता है। धनी लोग हाथी भी रखते थे। रात्री में मार्गो में जाना अत्यन्त भयावह था। इस प्रकार मृच्छकटिक में तत्कालीन समाज का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है।

संदर्भ सूची –

1. मृच्छकटिक – अंक– 9, श्लोक संख्या 39
2. मृच्छकटिक – अंक– 10, पृ. 434
3. मृच्छकटिक – अंक– 9, पृ. 346
4. मृच्छकटिक – अंक– 1, श्लोक संख्या 20
5. मृच्छकटिक – अंक– 9, श्लोक संख्या 17
6. मृच्छकटिक – अंक– 1, श्लोक संख्या 31
7. मृच्छकटिक – अंक– 2, पृ. 90
8. मृच्छकटिक – अंक– 9, पृ. 139
9. मृच्छकटिक – अंक– 9, पृ. 370

****